ICSSR Sponsored
ISSN: 2319-9997
Journal of Nehru Gram Bharati University, 2025; Vol. 14 (I):267-270

धर्मसूत्र साहित्य में प्रायश्चित्त विधान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

आराधना द्विवेदी *एवं सन्तेश्वर कुमार मिश्र
समाजशास्त्र विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
कोटवा-जमुनीपुर दुबावल प्रयागराज उ० प्र०
Corresponding author*gigglesprg@gmail.com

Received: 22.02.2025 Revised:02.05.2025 Accepted: 18.05.2025

शोध सारांश

प्राच्य भारतीय समाज में पाप पुण्य की अवधारणा विद्यमान रही, जो वर्तमान में भी अपने अस्तित्व को बनाए है। कोई भी व्यक्ति जो कुछ अपराध, अन्याय, हत्या, हिंसा, द्वेष और अनाचार से मनुष्य एवं अन्य जीवों को क्लेश पहुँचाता है उसका प्रतिफल उसे दण्ड भोग के रूप में मिलता है, ऐसी धारणा हिन्दू समाज में आज भी प्राप्त होती है। प्राच्य समाज चिन्तकों ने पापाचार और कदाचार से प्राप्त होने वाले दुखों:, कष्टों एवं यातनाओं से बचने के "प्रायश्चित" किए जाने की व्यवस्था की है, जिससे ज्ञाताज्ञात आपराधिक कृत्यों के प्रभाव को समाप्त किया जाता है। इन्हीं प्रायश्चित विधानों से समाज में सुधार, सदाचार तथा मर्यादित जीवन शैली की स्थापना बनी रहती है। अपराधी व्यक्ति को पुन : का वेदांग के वस्था हो जाती है। इसी व्य एवं अपराध से मुक्ति प्राप्तसामाजिक प्रतिष्ठा में समाजोपयोगी विधान विहितधर्मसूत्र साहित्यकिये गए हैं, जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचनीय रहे हैं। उन्हीं का संक्षिप्त विवेचन शोध पत्र में किया गया है।

मूल शब्द *प्रायश्चित व्यवस्था, पाप विमोचन का माध्यम, सामाजिक एवं वैयक्तिक सुधार, परिवर्तन, कर्म सिद्धान्त, कर्मफल भोग दण्ड विधान।*

भूमिका

धर्मसूत्र साहित्य प्राच्य भारतीय सामाजिक आचार संहिता (Code of Conduct) के रूप में वेदांग के अन्तर्गत रचित है। इनमें विवेचित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, पारिवारिक और वैयक्तिक तथा सांस्कृतिक नियम विधानों से हिन्दू समाज का संचालन पोषण एवं धारण होता रहा है। व्यक्ति को समाज, परिवार एवं देश के प्रति करणीय कर्त्तव्यों के विधान धर्मसूत्रों में ही किए गए हैं। सदाचार का पालन करना, अपराध न करना आदि विधि निषेधों के माध्यम से समाज, परिवार और वैयक्तिक जीवन विधि को नियंत्रित भी किया गया है। साथ ही सन्देशित और निर्देशित भी। यदि किसी अपराध प्रवृत्ति के व्यक्ति द्वारा अपराध एवं पापाचार किया जाता है, तो उसकी पुनरावृत्ति को रोकने तथा अपराधी को अपराध बोध करवा कर उसे सुधारने की भी व्यवस्था हमारे धर्मसूत्रों के आचार्यों द्वारा व्यवस्थायें दी गई हैं। जिसमें प्रायश्चित्त करके पाप मुक्ति की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रतिपादित है। इस पर सभी धर्मसूत्रकारों ने विशद चिंतन प्रस्तुत

किया है। जिनका संक्षेपतय विवेचन किया जाना क दृष्टि से समाजशस्त्रीगवेषणात्म : कि इन है क्योंअभीष्ट ंहीं प्रायश्चित्त विधानों के आज भी भारतीय हिन्दू समाज में पापपुण्य की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में दर्शन होते हैं। व्यक्ति एवं समाज इनका आधार ग्रहण जीवन्तता प्राप्त किया है। इनसे नैतिक मूल्यों की स्थापनायें पुष्टि प्राप्त करती रही हैं।

आचार्यों की मान्यता है कि समाज में व्यक्ति बुरे कर्मों को करके पापमय बन जाता है।[i] पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त किये जाये ?अथवा नहीं इस पर हमारे धर्मसूत्रकारों ने व्यापक चिंतन मत भिन्नता पूर्वक किया है।[ii] प्रायश्चित्त के रूप में करणीय कर्मानुष्ठानों में जप, तप, होम, उपवास तथा दान कर्म प्रमुख हैं। देवपूजा, अतिथिसत्कार, परोपकार आदि सामान्य प्रायश्चित्त कर्म है। जिनके उपविभाजन और प्रकार तथा विधियाँ बहुविस्तृत हैं।

उद्देश्य

इस अध्ययन द्वारा अग्रलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा हैधर्मसूत्रों :प्रथमत - का विवेचन तथा दूसरा पाप के फलमें पापपुण्य, दोष तथा अपराध मुक्ति के उपाय के रूप में प्रायश्चित्त विधानों के संज्ञान का विश्लेषण करना है। जो समाजोपयोगी रहे हैं। धर्मसूत्रकारों की दृष्टि में अपराध, हत्या, चोरी, तस्करी, धोखा आदि पातक कर्मों से पाप होता है, जिसका शमन प्रायश्चित्त कर्मों द्वारा होना निश्चित किया गया है। तीसरा इसी अवधारणा के आलोक में धर्मसूत्रों में कर्मफल और पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी अग्रेषित हुआ कहा जा सकता है। पाप और प्रायश्चित्त विधानों के माध्यम से आचार्यों ने सामाजिक नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापनाएं भी किया है। इसी के माध्यम से पाप कर्मों से बचने की विचारधारा विकसित की गयी है, साथ ही पापकर्मों को पुन कदापि न :कर अपने को सुधारने की व्यवस्था की गयी है। इसे विश्लेषित किया जाना उद्देश्य निर्धारित हुआ है।

शोध पद्धति-

समाजशास्त्रीय अनुसंधान में यद्यपि अनेक पद्धतियों के प्रयोग किए जाते हैं, किन्तु समाजशास्त्र की ''साहित्य का समाजशास्त्र'' नामक उपविद्या में साहित्य को आधार बनाकर प्राप्त सन्दर्भों का विश्लेषण किया जाता ह। अतएव प्रस्तुत शोधपत्र के विवेचन में विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक इन तीन शोध पद्धतियों का प्रयोग किया है, जिससे प्रतिपाद्य की विवेचना सम्भव बन सकी है।

सम्बद्ध साहित्य

प्रस्तुत शोध पत्र के विषय विवेचन में प्रमुख रूप में वेदांग की कल्प अथवा सूत्र साहित्य की उपविधा ''धर्मसूत्र साहित्य'' को प्रमुख स्रोत बनाया गया है। जिनमें गौतम धर्मसूत्र, वसिष्ठ धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, सत्याषाढ धर्मसूत्र तथा विष्णु धर्मसूका प्रयोग 9 यन और विचारों को भी समाहित किया गया है। इसके साथ ही नूतन गवेषणाओं के अध्य किया गया है, जिनमें सर अय्यर आदि मुख्य हैं।

विश्लेषण

ज्ञातव्य तथ्य तो यह है कि प्रायश्चित्त सम्बन्धी नैतिक मूल्यों की स्थापना में धर्मसूत्रकार आचार्यों का आधार श्रुति ही रही है। समाज में पापी अथवा अपराधी व्यक्ति को आत्म ग्लानि, पश्चाताप तथा संताप होता रहता है। साथ ही वह समाज एवं परिवार में सदा निन्दिन, घृणित और तिरस्कृत होता रहता है। इससे मुक्ति पाने के लिए ही प्रायश्चित्त विधान उसे सहायक सिद्ध होते हैं। सुधार करने तथा पुन: पातक कर्मों को न करने की प्रेरणा भी प्रायश्चित्त कर्मों से मनोवैज्ञानिक रूप में प्राप्त होती है। अन्यथा की स्थिति में पापाचारी के पुत्र की भी जन्म से सामाजिक स्थिति पायी की ही मानी गई है। पापकर्मों के प्रकार भी कम और अधिक जधन्य सिद्ध हैं। इन्हीं के अनुसार प्रायश्चित्त और दण्ड विधान भी विहित है। प्रायश्चित्त कर्मों में ब्रह्मचर्य व्रत पालन, मंत्रजप, होम आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना निश्चित किया गया है। इनसे पापाचारों पर नियंत्रण और पापी की स्थिति में सुधर होता है। इन्हें नैतिक मूल्य के आर्दश के रूप में देखा जा सकता है। कठिन तपस्या और आत्मपीड़न जैसे प्रायश्चित्त कठोर होते हैं, जबकि उक्त प्रायश्चित्त सरल और सुकर्य होते हैं। इस प्रकार धर्मसूत्रों के अन्तर्गत प्रायश्चित्त विषय नैतिक मूल्यों की अवधारणा विकसित कर पाप एवं पातक कर्मों पर नियंत्रण करने का लक्ष्य निर्धारित हुआ है। गौतम आचार्य ने सत्य ही कहा है, कि कर्मों का क्षय (विनाश) नहीं होता है। उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। पूर्वकृत कर्म उसके कर्ता को वैसे ही प्राप्त कर लेता है, जैसे सहस्रों गायों में भी बछड़ा अपनी माता को ढूँढ लेता है। पापकर्मों से मुक्ति के लिए आचार्यों ने अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त विधानों की व्यवस्था किया है। जिनका विश्लेषण बहुव्यापक होने के कारण यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, किन्तु उनका अनुपालन करने पर पापाचारी व्यक्ति निष्पाप और निर्दोष घोषित होकर समाज और परिवार में सम्मानपूर्वक जीवन यापन करने की योग्यता प्राप्त कर लेता रहा है।

वास्तविकता तो यह रही है कि धर्मसूत्रकारों ने कर्म के सिद्धान्त का जो विकास किया है, वह सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन में नैतिकता पूर्ण आचरण को अनुपालन करने की सम्प्रेरणा प्रदान करने वाला सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसका प्रयोजन कुछ और नहीं दीख पड़ता है। यही विचार हमें सर अय्यर की उक्त विषयक अवधारणा में प्राप्त होता है कि ''यह एक सिद्धान्त से अधिक कुछ और हो सकता है, यह सिद्ध करना कठिन है और सद् या असद् अथवा सौभाग्य या दुर्भाग्य की सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सफल नहीं होता है।[iii]

निष्कर्ष

पूर्व लिखित तथ्यों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर निष्कर्षत यह तथ्य : ष्टस्प हो जाता है कि प्रायश्चित्त विधान समाज के सुधार कार्य में अनुप्रयुक्त उचित विधान रहे हैं। कर्मफल के भोग के भय से ही व्यक्ति अनाचार, पाप, हिंसा आदि आपराधिक कृत्यों से बचता है। ज्ञाताज्ञात रूप में हुए पापकर्म के शमन के लिए ही प्रायश्चित विधानों की व्यवस्था करके समाज को अपराधमुक्त करने का धर्मसूत्रों के आचार्यों के प्रयास निश्चयेन स्तुत्य रहे हैं। जिन्हें नैतिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। यही कारण है कि समाज में पाप पुण्य की प्रबल अवधारणा आज भी विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[i] गौतम धर्मसूत्र 3.1.2. - सम्पादक श्री निवासाचार्य, मैसूर-1927
बौधायन धर्मसूत्र-3.10.2-3 - हिन्दी अनुवाद डॉ० उमेश चन्द्र पाण्डेय चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी-1972
वसिष्ठ धर्मसूत्र 22.1-ए०ए० फ्यूरेर द्वारा सम्पादित भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना-1930 (वसिष्ठ धर्मशास्त्र)

[ii] तदैव 3.1.3 तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यात् न कुर्यात् इति मीमांसन्तो बौधायन धर्मसूत्र 3.104

[iii] The Evaluation of Hindu Moral Ideals, Aiyer, Sir P.S. Sivaswamy P. 135, Culcutta University 1935.
"That the Doctrine of Karma is not successful in Solving all the problems of good good or bad forture may be Consedired. Thus it is more then a Theory can not be asserted or proued."

Disclaimer/Publisher's Note:
The statements, opinions and data contained in all publications are solely those of the individual author(s) and contributor(s) and not of JNGBU and/or the editor(s). JNGBU and/or the editor(s) disclaim responsibility for any injury to people or property resulting from any ideas, methods, instructions or products referred to in the content.